जैन तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञान धारा-4)

Jain Facts : Beyond Modern Knowledge

वैज्ञानिक आईन्स्टीन के सिद्धान्तों को पुनः परीक्षण की आवश्यकता

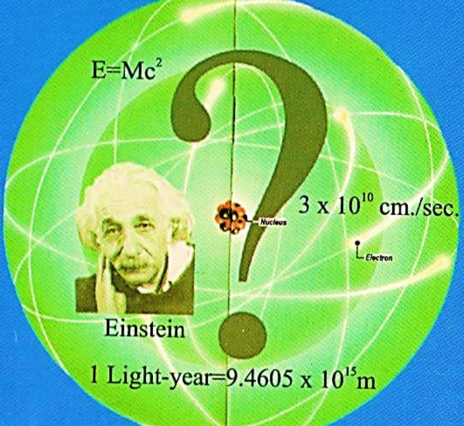

लेखक - वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

पंचम अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी प्रतापगढ़ में आ. श्री स्वरचित ग्रंथ डॉ. प्रणव पांड्या (अंतर्राष्ट्रीय गायत्री परिवार) को प्रदान करते हुए।

जैन तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञान धारा-4)
Jain Facts : Beyound Modern Knowledge

वैज्ञानिक आईन्स्टीन के सिद्धान्तोंको पुनः परीक्षण की आवश्यकता

-: लेखक :-
वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

प्रकाशक
धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बडौत)
धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर)

मुद्रक :
जैन प्रिन्टर्स, उदयपुर, फोन : 2425843

जैन तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञान धारा-4)
Jain Facts : Beyound Modern Knowledge

वैज्ञानिक आईन्स्टीन के सिद्धान्तों को पुनः परीक्षण की आवश्यकता

ग्रंथाङ्क - 147

लेखक -
वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

संस्करण - *प्रथम* - 2005
प्रतियाँ - 2000
मूल्य - 15.00/- रुपये

द्रव्यदाता / ज्ञानदाता
श्रीमती यशोदा (सत्यभामा) W/o सज्जनलाल जी जैन
श्रीमान् सज्जनलालजी S/o मोहनलालजी जैन (संगावत)
154 सर्वत्रऋतु विलास - उदयपुर 313001

"वैज्ञानिक आईन्स्टीन के सिद्धान्तों को पुन: परीक्षण की आवश्यकता"

जिस प्रकार मेरे जीवन में (आ. कनकनंदी) सत्य का प्रभाव सबसे अधिक रहा है उसी प्रकार सिद्धान्तों में अनेकान्त सिद्धान्त (सापेक्ष सिद्धान्त) का प्रभाव भी ज्यादा रहा। इसी प्रकार वैज्ञानिकों में आईन्स्टीन का प्रभाव मेरे जीवन में अधिक रहा क्योंकि आईन्स्टीन केवल एक वैज्ञानिक ही नहीं थे परंतु एक उदारवादी, चिंतक, अहिंसक, शांतिप्रिय, संगीत प्रेमी, प्रगतिशील, नवीन विचारक, आध्यात्म प्रेमी तथा अध्यात्मिक धर्म एवं विज्ञान के समन्वयक थे। उनके ऊर्जा सिद्धान्त, सापेक्ष सिद्धान्त, प्रकाश सिद्धान्त, गति सिद्धान्त आदि ने केवल भौतिक विज्ञान को ही प्रभावित नहीं किया है परंतु चिंतन, राजनीति, कानून, पर्यावरण, अहिंसा, पारिस्थितिकी आदि को भी प्रभावित किया है, उसे संशोधित भी किया है, उसे व्यापक एवं प्रगतिशील बनाया है। इसी से वैचारिक उदारता, धार्मिक सहिष्णुता, विश्वमैत्री, विश्वप्रेम, सह अस्तित्व, सहयोग आदि में गुणवत्ता आ रही है। इन सब कारणों से वैज्ञानिक आईन्स्टीन को मैं केवल एक वैज्ञानिक ही नहीं मानता हूँ, जिन्होंने शांति के लिए युद्ध के विरोध करने के लिए अमेरीका के राष्ट्रपति बनने के निमंत्रण को भी स्वीकार नहीं किया। द्वितीय विश्व

युद्ध में हीरोशिमा-नागासाकी के ऊपर जो अणुबम विस्फोट किया गया उससे वे और उनके बम बनाने वाले सहयोगी वैज्ञानिक भी दुःखी हुए, कुछ तो देश छोडकर चले गये और कुछ तो विक्षुब्ध हो गये। इससे वैज्ञानिक आईन्स्टीन और सच्चे वैज्ञानिकों के बारे में यह परिज्ञान होता है कि जो वैज्ञानिक होते हैं वे सत्य प्रेमी, अहिंसा के उपासक, विश्वमैत्री के पोषक तथा प्रगतिशील विचारधारा के होते हैं। इन सब कारणों से मैं एक जैन धर्म का आचार्य होते हुए भी वैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों को पढता हूँ, उन्हें आदर देता हूँ उनके सत्य-तथ्यात्मक सिद्धान्तों स्वीकार करता हूँ, मेरे विभिन्न लेख, साहित्य, प्रवचन, संगोष्ठी, शिविर आदि में उद्धृत करता हूँ, धर्म के साथ उसका समन्वय करता हूँ। इतना ही नहीं धर्म और धर्मावलम्बियों को भी विज्ञान तथा वैज्ञानिक के जैसे सत्यनिष्ठ, प्रगतिशील, विश्वहित चिंतक बनने के लिए प्रेरित करता हूँ। यह सब होते हुए भी मैंने जो अनुभव किया कि विज्ञान सत्य के मार्ग पर होते हुए भी परम सत्य पर नहीं पहुँचा है और परम सत्य पर पहूँचने के लिए केवल भौतिक तत्व, भौतिक प्रमाण, भौतिक यंत्रों के परे/आगे भी अभौतिक तत्त्व, आध्यात्मिक चिंतन/प्रमाण/अनुभव तथा आध्यात्मिक संतों का भी मार्गदर्शन लेना आवश्यक है और कुछ क्षेत्र में तो अनिवार्य भी है। इसलिए मैंने निम्नोक्त नारा दिया है -

1) Science is part of Religion but Religion is absolute Science.

2) You give me co-operation, I shall give you scientific Religion .

अर्थात् - 1) विज्ञान आंशिक धर्म है एवं धर्म पूर्ण विज्ञान है।

2) आप मुझे सहयोग दे, मैं आपको एक वैज्ञानिक धर्म दूँगा।

मेरी भावना है विज्ञान एवं आध्यात्मिकता का समन्वय हो, जिससे विज्ञान के चहुमुखी विकास से मानव का सर्वाङ्गीण विकास संभव हो। इस दृष्टि से इस कार्य के लिए मैं बहुत वर्षों से प्रयासरत हूँ जिसमें मुझे सफलता भी प्राप्त हो रही है। मेरी भावना है कि आध्यात्म विज्ञानमय हो एवं विज्ञान आध्यात्ममय हो, धार्मिक वैज्ञानिक बने एवं वैज्ञानिक धार्मिक बनें, संत (Saint) साईन्टीस्ट बनें एवं साईन्टीस्ट संत बने। विज्ञान सत्यग्राही एवं सत्य के पथ पर होते हुए भी उसके लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता है अन्यथा विज्ञान जडवादी, संकीर्ण, कुंठित बन जायेगा। इस दृष्टि से आध्यात्मिक में निहित कुछ सिद्धान्तों को विज्ञान में वैज्ञानिक प्रयोग करे इस उद्देश्य से इस लेख में भी आईन्स्टीन के विभिन्न सिद्धान्तों में आध्यात्मिकता का समन्वय करके आईन्स्टीन के सिद्धान्तों को और भी अधिक व्यापक, प्रगतिशील, गुणवत्ता से युक्त बनाने के लिए सनम्र प्रयास कर रहा हूँ।

I प्रकाश एवं गति सिद्धान्त का पुन: परीक्षण-

वैज्ञानिक आईन्स्टीन ने प्रकाश की गति प्रति सैकण्ड 3 लाख कि.मी. माना था जो कि निरपेक्ष एवं परम गति है। उन्होंने प्रकाश की गति को सीधा माना एवं अपरिवर्तनशील माना था। इसे हम विभिन्न दृष्टिकोण से परिशीलन निम्नोक्त रीति से कर रहे हैं -

अनन्त, सर्वव्यापी, अमूर्तिक आकाश द्रव्य की अविच्छिन्न, अखण्ड, अन्तर से रहित श्रेणियाँ होती हैं। ये श्रेणियाँ भी आकाश द्रव्य स्वरूप ही है, न कि भौतिक स्वरूप। ये श्रेणियाँ प्राकृतिक, शाश्वतिक, अनादि, अनन्त स्वरूप वाली हैं।ये श्रेणियाँ ऊर्ध्व से अध: एवं एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व रूप में व्यवस्थित हैं अर्थात् पूर्व-पश्चिम एवं दक्षिण-उत्तर रूप में व्यवस्थित है। 1) शुद्ध जीव 2) मृतजीव (मृत्यु के बाद एवं जन्म ग्रहण के मध्य) 3) शुद्ध परमाणु सदा सर्वदा एवं सर्वत्र श्रेणी में ही सीधा गमन करते हैं। अशुद्ध जीव एवं अशुद्ध पुद्गल के लिए यह नियम नहीं है। शुद्ध जीव एवं परमाणु में स्व निहित अनन्त शक्तियाँ पूर्णत: प्रकट हो जाती हैं, प्रकट रहती हैं तथा मरणोपरान्त जीव में आत्मा+कार्माण शरीर+तैजस शरीर होता है, परंतु स्थूल औदारिक या वैक्रियक

शरीर नहीं होता है; जिससे मृतात्मा भी अत्यन्त सूक्ष्म शक्तिशाली, गतिशील होता है इसलिए उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं से सम्पन्न जीव एवं पुद्गल की गति श्रेणी में एक समय में 14 रज्जु/असंख्यात योजन या अनेक प्रकाश वर्ष (जब प्रकाश की गति प्रति सैकण्ड 3 लाख कि.मी. मानी जावे) होती है। अतएव वैज्ञानिक आईन्स्टीन ने जो प्रकाश की गति प्रति सैकण्ड 3 लाख कि. मी. को परम गति माना था वह सत्य नहीं है। प्रकाश भी पुद्गल स्कन्ध की पर्याय होने से परमाणु नहीं है परंतु अनन्तानन्त परमाणुओं का समुह स्वरूप है। विज्ञान में जो प्रकाश को फोटोन माना है वह फोटोन भी परमाणु न होकर परमाणु के समुह स्वरूप है। अतः परमाणु जिस प्रकार अविभाज्य, परम सूक्ष्म, भार विहीन, स्थूलता (Mass) संहति रहित अव्याबाध, परम गतिवान् हो सकता है वैसा पुद्गल की अन्य किसी भी अवस्था में संभव नहीं है।

आईन्स्टीन ने शक्ति और पदार्थ के भिन्नत्व की रेखा को मिटाते हुए बताया कि प्रकाश का सूक्ष्मतम कण फोटोन भी शक्ति का पुञ्ज है। अतः कण में शक्ति है तथा शक्ति में कण निहित है। फोटोन्स की इस मान्यता ने वैज्ञानिक जगत् में क्रांति ला दी। इसके पूर्व प्रकाश को तरङ्ग रूप में स्वीकार किया जाता था, जिसका आधार अनेक साधारण प्रयोग थे। इस प्रकार कण और तरङ्ग का

विवाद प्रारम्भ हो गया। दोनों के पथ अनेक-अनेक प्रयोगों पर आधारित थे। यह प्लैंक और आईन्स्टीन के समय तीव्र हो उठा। प्लैंक ने शक्ति को तरङ्ग रूप माना तो आईन्स्टीन ने शक्ति को कण में निहित माना। तरङ्ग पथ की पुष्टि आगे के वैज्ञानिकों ने परमाणु रचना में की। इस विवाद को मिटाने के लिए विज्ञान जगत् ने सूक्ष्मतम इकाई को एक ही समय में कण और तरङ्ग दोनों रूप में स्वीकार किया। जहाँ कण है, वहाँ तरङ्ग क्षेत्र है तथा जहाँ तरङ्ग क्षेत्र है वहाँ कण है। फोटोन्स की धारा में तरङ्ग का निर्माण होने का चित्र दिया गया, उसे तरङ्ग क्षेत्र माना गया। यह चित्र संतोष जनक नहीं था, लेकिन इससे अच्छा कोई चित्र बन भी नहीं सकता था। अगर विज्ञान यहीं रुक जाता तो एक बडे अनिष्ट की संभावना थी इसलिए इस समझौते को स्वीकार तो किया गया लेकिन साधारण बुद्धि का प्रश्न सदैव उठा कि इनका तालमेल कैसे बैठाया जाए ?

जर्मन वैज्ञानिक हाइजनबर्ग ने इस समस्या को मूल से उठाया। उसके अनुसार पदार्थ की सूक्ष्मतम इकाई का बोध हमारे स्थूल प्रयोग नहीं कर सकते क्योंकि वे सभी इंद्रिय-जन्य हैं। जिस समय में कण की गति होती है, उसका बोध हम उसी क्षण नहीं कर सकते इसलिए पदार्थ के बोध के प्रति अनिश्चितता ही रहती है। हाइजनबर्ग ने विचारात्मक प्रयोग किये। उसने बताया कि अगर एक फोटोन एक इलेक्ट्रोन से टकरायेगा तो उसकी गति बदलेगी और

दिशा भी, लेकिन यह क्या होगी ? यह हमारे स्थूल प्रयोग न तो ठीक बता सकते हैं और न इस प्रयोग की तुलना बंदूक से छूटने वाली गोली की गति और दिशा से की जा सकती है। कण जब गति करता है तो वह पूर्ण स्वतंत्र नहीं होता है क्योंकि उसके वातावरण में उपस्थित अन्य परमाणु का प्रभाव रहता है अत: वह कण किस दिशा में जायेगा यह निश्चित नहीं हो सकता। एक लम्बी यात्रा के बाद विज्ञान को जर्मन वैज्ञानिक हाइजनबर्ग का ***''अनिश्चितता का सिद्धान्त''*** से सूक्ष्म कणों के सम्बन्ध में अस्थाई रूप से समस्या का समाधान मिला है। हाइजन बर्ग के अनुसार परमाणु के स्तर पर होने वाली घटनाएँ, परिवर्तन और गति, स्थूल पदार्थ की भांति नहीं है और न स्थूल प्रयोगों के द्वारा जानी भी जा सकती हैं। गति के नियम जो न्यूटन और गैलिलियो ने स्वीकार किये वे केवल स्थूल पदार्थों पर ही लागू होते हैं। सौर मण्डल के नक्षत्रों पर तथा परमाणु के भीतर के सौर मण्डल पर वे नियम लागू नहीं हो सकते, कारण यह कि जो भी उपकरण प्रयोग में लाये जाते हैं वे पदार्थ के छोटे-छोटे कण से सदैव बडे होते हैं। अत: वे उपकरण स्वयं उन कणों की गति को प्रभावित कर देते हैं, जैसे एक थर्मामीटर के द्वारा गिलास में भरें पानी का तापक्रम तो लिया जा सकता है लेकिन दो बूंद पानी का तापक्रम उसी थर्मामीटर से नहीं लिया जा सकता है इसलिए उपकरण सदैव छोटा होना चाहिए। यह परमाणु के लिए कभी संभव नहीं क्योंकि

प्रत्येक उपकरण परमाणु से बडा होगा। विज्ञान के क्षेत्र में सूक्ष्म और स्थूल पदार्थ के व्यवहार का यह भेद प्रगति का एक कदम माना गया।

जैन आगम में सूक्ष्म का अत्यन्त मौलिक विवेचन है, ऐसा विवेचन अन्य प्राच्य साहित्य में उपलब्ध नहीं है। जैन आगम और विज्ञान ने पदार्थ की सूक्ष्मतम इकाई को परमाणु कहा है लेकिन जैन आगम के अनुसार परमाणु दो प्रकार के हैं। सूक्ष्म परमाणु और व्यवहार परमाणु (अणु)। परमाणु स्पर्श, रस, गंध और वर्ण युक्त होता है। सूक्ष्म परमाणुओं के परस्पर संयोग से बनने वाले स्कन्ध-यौगिक के लिए केवल स्पर्श गुण को ही आवश्यक माना है, गंध, रस और वर्ण को नहीं। स्पर्श कुल आठ हैं। वे चार युगल जोडी है।

1) स्निग्ध - रूक्ष
2) शीत - उष्ण
3) गुरु - लघु
4) कर्कश - मृदु

इनमें प्रथम दो युगलवाले चार स्पर्श, प्राथमिक स्पर्श और शेष दो युगल वाले चार स्पर्श द्वितीयक स्पर्श हैं। परमाणु में केवल दो स्पर्श होते हैं। और वे प्रथम दो युगलों में से एक-एक होता है अर्थात् परमाणु स्निग्ध-शीत, स्निग्ध-उष्ण, रूक्ष-शीत,

रूक्ष-उष्ण स्पर्श वाला हो सकता है।इस प्रकार समस्त लोक में स्वतन्त्र परमाणु उपरोक्त चार प्रकार के होते हैं किन्तु स्निग्धता, रूक्षता और ऊष्णता, शीतलता के अंशों में अनन्त गुणा अंतर होता हैऔर इस दृष्टि से परमाणु में भिन्नता रहती है ।इन सूक्ष्मतम परमाणुओं की तुलना विज्ञान द्वारा प्रतिपादित परमाणु से नहीं की जा सकती क्योंकि सूक्ष्म परमाणु भार रहित होते हैं, जबकि विज्ञान सम्मत परमाणु में भार होता है। इस दृष्टि से जैन आगम में प्रतिपादित परमाणु में भिन्नता रहती है। इस दृष्टि से जैन आगम में प्रतिपादित व्यवहार परमाणुओं की तुलना इलेक्ट्रोन और प्रोटोन युक्त परमाणु से की जा सकती है क्योंकि व्यवहार परमाणु भार सहित होता है जो अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं से मिला अष्टस्पर्शी स्कंध है। औपचारिक रूप से भार की भिन्नता को बताने हेतु इसे व्यवहार परमाणु कहा है। भार रहित पदार्थ और भार सहित पदार्थ की चर्चा केवल जैन आगम में उपलब्ध है।

जैसा कि बताया गया है कि परमाणु दो स्पर्श वाला है और ऐसे परमाणु परस्पर में संयोग करते हैं तो दो प्रकार के स्कंध पदार्थ बनाते हैं।

1) चौस्पर्शी स्कंध (सूक्ष्मपदार्थ)।

2) अष्टस्पर्शी स्कंध (स्थूलपदार्थ)।

चौस्पर्शी स्कंध में स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण और शीत चार प्राथमिक स्पर्श होते हैं। अष्ट स्पर्शी स्कंध में गुरु, लघु और मृदु, कर्कश ये चार द्वितीयक स्पर्श बढ जाते हैं। गुरु, लघु स्पर्श के कारण अष्ट स्पर्शी यौगिक में भार होता है - इन स्कंधों का सूक्ष्मतम कण/व्यवहार कण व्यवहार परमाणु होता है जो स्थूल पदार्थों की रचना करते हैं। चौस्पर्शी स्कंध भार हीन होते हैं और ये सूक्ष्म पदार्थ की रचना करते हैं। स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों का भेद, विज्ञान जगत् में अभी पूर्ण व्यवस्थित नहीं हुआ है।

रज्जू की परिभाषा-

जस्स असंखेज्जाऊ सो वि असंखेज्ज-जोयणाणि पुढं।
गच्छेदि एक्क समय आगच्छदि तेत्तियासिं पि ॥ 169

(तिलो. प.भा. 1 अ. 3 पृ.सं. 486)

जिस देव की आयु असंख्यात वर्ष की है, वह एक समय में असंख्यात योजन जाता है और इतने ही योजन आता है (योजन = 4 कोस = 8 मील)। इस गति से यदि कोई देव लगातार छः महिना गमन करेगा तो वह जितनी दूरी पार करेगा वह दूरी एक रज्जू के बराबर होगी।

आईन्स्टीन द्वारा मान्य प्रकाश की गति, परम तथा स्थिर नहीं है –

आधुनिक वैज्ञानिक प्रमाण –

1980 में बैरी सैटरफिल्ड द्वारा किये गये सिद्धान्त सी डिके (प्रकाश की गति में कमी आना) ने सृष्टि के प्रारंभ से अब तक प्रकाश की गति में कमी आने की बात सामने रखी, लेकिन वे इसका कोई प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत नहीं कर पाये। अब नई खोज में सुदूर तारामंडलों के प्रकाश की गणना के आधार पर वैज्ञानिकों ने प्रकाश की गति मंद पडते जाने को सिद्ध करने का दावा किया है, तब क्या यह मान लिया जाय कि बीती सदी के सबसे बडे जीनियस माने जाने वाले आईन्स्टीन गलत थे एवं उनका सापेक्षता का सिद्धान्त तृटिपूर्ण था, कम से कम नई खोजे तो यही कहती हैं।

मैकेरी विश्व विद्यालय सिडनी के सेंटर फॉर एस्ट्रो बायोलोजी के भौतिक विज्ञानी प्रो. पॉल डेवीस ने दावा किया है कि बिगबैंग अर्थात् ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के समय प्रकाश की गति अनन्त थी। जो ब्रह्माण्डीय अवरोधकों के कारण घटकर आज 3 लाख कि. मी. प्रति सैकण्ड रह गई है।

पॉल डेवीस युनिवर्सिटी ऑफ न्यु साउथ वेल्स के अंतरिक्ष

विज्ञानी जॉन बेब द्वारा 1999 में प्रकाशित खोजों व मिशेल मर्फी द्वारा निकाले गये निष्कर्षों पर शोध कर रहे थे। जॉन बेब 120 करोड प्रकाश वर्ष दूर स्थित विशाल काय तारे कासर से आने वाले प्रकाश के व्यवहार की व्याख्या नहीं कर पाये थे। पॉल डेवीस ने प्रकाश की गति के निरन्तर कम होते जाने के कारणों में इन्हीं तथ्यों को सबुत में पेश किया है।

इस नवीनतम खोज में आज तक पाये जाने वाले प्रकाश के वर्ण विन्यास की तुलना में सुदूर अन्तरिक्ष (120 करोड प्रकाश वर्ष) से आने वाले प्रकाश द्वारा बनी इंद्रधनुषी रंग पट्टिका में हल्का सा बदलाव पाया गया। हालांकि यह लाख में एक जैसा छोटा फर्क था और इस पद्धति में असंख्य कारक भी काम कर सकते थे। लेकिन प्रो. डेवीस के अनुसार संदेह करने के लिए इतना ही पर्याप्त है। उनका कहना है कि प्रकाश के इस व्यवहार की गाणितीय व्याख्या करना अभी जरा मुश्किल है जो कि भौतिकी एवं ब्रह्माण्ड के प्रचलित आधार भूत सिद्धान्तों को बदल डालेगा लेकिन वे जल्द ही सफल हो जायेंगे।

प्रकाश के व्यवहार पर कई दशकों से कई वैज्ञानिक शोध कर रहे हैं, लेकिन अभी भी इसके गति परिवर्तन के लिए जिम्मेदार कारणों के विषय में कुछ भी कह पाना मुश्किल जान पडता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक लाइनबीबर के अनुसार रेखीय संरचना को ध्यान

में रखते हुए ब्रह्माण्ड में निर्वात की संरचना को बदलते जाना भी इसका एक मुख्य कारण हो सकता है।

बैरी सैटरफील्ड की सी डीके रिसर्च के अनुसार निर्वात की आंतरिक ऊर्जा इलेक्ट्रोन व पॉजिट्रोन सरीके शाश्वत कणों को कभी मार्ग भटकने पर व कभी एक जगह पर उनकी संख्या बढाने पर मजबूर कर सकती है। जब प्रकाश कण - फोटोन निर्वात से गति करते हुए किसी कण से टकराता है तो वह उसके द्वारा शोषित कर लिया जाता है, लेकिन कुछ ही समय बाद उससे निकल भी जाता है यद्यपि यह अतितीव्र वेगी प्रक्रिया है, लेकिन इस समय को हम माप करते हैं। इस तरह प्रकाश अनेकों व्यवधानों से गुजरता हुआ अपनी मंजिल तक पहुँचता है और यदि समय के साथ-साथ अंतरिक्ष की वजह से प्रकाश को और अधिक समय लगना स्वाभाविक है। बैरी सैटरफील्ड का कहना था की सृष्टि के प्रारंभ में प्रकाश की गति आज से 1060 गुणा ज्यादा थी जो अब 1011 स्तर पर आ चुकी है जिसका मुख्य कारण निर्वात की संरचना का बदलते जाना है, लेकिन इसके बावजूद ऊर्जा ज्यों की त्यों संरक्षित रहेगी और यदि प्रकाश की गति पहले जितनी ही रही होती तो चारों ओर से प्रकाश की तीव्रता के कारण जीवन संभव न होता क्योंकि ज्यादातर नाभिकिय प्रक्रियाएँ प्रकाश की गति से

संबन्धित है। इन खोजों से सौर मण्डलीय व भू प्रक्रियाओं को समझने में ज्यादा आसानी रहेगी।

प्रो. सैटरफील्ड का मानना है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के बाद प्रकाश की गति बहुत तेजी के साथ कम हुई और संभवत: केवल कुछ दशकों पहले स्थिर हो गई। प्रारंभ में जब आकाश में प्रकाश की गति अरबों गुणा तेज होगी और सापेक्षता के सिद्धान्त के मुताबिक ऊर्जा खरबों गुणा रही होगी तब चुल्हे की आंच भी किसी परमाणु बम से कम नहीं मानी जा सकती लेकिन द्रव्यमान के आधार पर प्रकाश की गति के विपरीत अनुपात में होने के कारण ऊर्जा आज भी उतनी ही होगी। जितनी की सृष्टि के प्रारंभ में थी और प्रकाश की गति कम होते जाने के साथ-साथ द्रव्यमान बढता गया। उनका कहना था कि वे इलेक्ट्रोन के आवेश के गिरते जाने को भी प्रमाणित कर सकते हैं।

पॉल डेवीस का भी मानना है कि प्रारंभ में ब्रह्माण्ड बहुत अधिक तेजी के साथ बढा होगा लेकिन आज वो स्थिर हो चुका है। और थर्मोडायनामिक्स के सिद्धान्तों के अनुसार प्रकाश की गति कम होती जाने के कारण ब्लैक होल का क्षेत्र लगातार बढ रहा है जो ब्रह्माण्ड के लिए कभी भी खतरा बन सकता है। एक

बात निश्चित है कि प्रकाश की गति से तेज चलने वाले अंतरिक्ष यान ब्रह्माण्ड की खोज में बहुत सहायक सिद्ध होंगे, क्योंकि अभी तक यह माना जा रहा था कि प्रकाश की गति ही ब्रह्माण्ड में सबसे तेज है पर ब्रह्माण्ड तो अनन्त है।

आईन्स्टीन ने प्रकाश की गति को निरपेक्ष परम कहा है यह एकान्ततः निरपेक्ष रूप से सही नहीं है। क्योंकि अन्य की गति कम होने के कारण प्रकाश की गति को परम कंहने के कारण भी यह गति भी सापेक्ष ही हुई।उपर्युक्त वर्णित परमाणु, शुद्ध जीवादि की गति प्रकाश की गति से भी अधिक होने से प्रकाश की गति सापेक्ष हुई। श्याम विवर (ब्लैक होल) के कारण प्रकाश की गति वक्र हो जाती है यहाँ तक की श्याम विवर प्रकाश को अवशोषित करने के कारण भी प्रकाश की गति सर्वत्र सीधी, परम नहीं रहती है। इस संबंधी मेरी जिज्ञासा यह है कि आईन्स्टीन ने इस प्रकाश की परम गति को कैसे मापा ? किसी यंत्र या साधन से मापा ? किस गति के आधार पर मापा ? इतनी तीव्र गति एवं दीर्घ दूरी को कौनसे क्षेत्र में एवं कौन से पैमाने पर मापा ? मैंने अनेक वैज्ञानिक आदि को उपर्युक्त प्रश्न पूछा परंतु किसी ने भी तथ्य परक उत्तर नहीं दिया है।

II समय-गति की शून्यता के सिद्धान्त का पुनः परीक्षण -

आईन्स्टीन के मतानुसार यदि किसी वस्तु का वेग प्रकाश के वेग का $^{9}/_{10}$ हो तो उस वस्तु की लम्बाई गति की दिशा में आधी रह जाती है और यदि कोई पिण्ड प्रकाश के वेग के बराबर चल सके तो उसके लिए समय ठहर जाता है।

यदि दो जुडवा भाई में से एक भाई पृथ्वी पर रहेगा और एक भाई अन्तरिक्ष में प्रकाश की गति से 50-60 वर्ष यात्रा करके वापिस आयेगा तब पृथ्वी पर रहने वाला भाई वृद्ध हो जायेगा लेकिन अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाला भाई यात्रा प्रारम्भ के समय की आयु एवं उसी अवस्था में ही रहेगा। इसके लिए वैज्ञानिक आईन्स्टीन ने कोई ठोस कारण, प्रमाण, गणित, उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया है, परन्तु इसकी समीक्षा निम्न में कुछ भारतीय उदाहरण, काल गणना के आधार पर कर रहे हैं।

उदाहरण- (1) सत्ययुग के राजा रैवत न्यायी, वीर एवं प्रजापालक नरेश हुये हैं। उन्होंने समुद्र के भीतर मय दानव की मदद से कुशस्थली नाम की नगरी बसाई थी। उसी में रह कर वे जम्बूद्वीप के कई प्रदेशों पर शासन करते थे। उनके सौ पुत्र और एक कन्या थी। कन्या का नाम रेवती था।

एक बार किसी कार्यवश रैवत अपनी कन्या को लेकर ब्रह्मलोक में गये। ब्रह्मलोक में उस समय किसी उत्सव की धूम मची हुई थी। गन्धर्व, किन्नर और देवता गण चतुरानन की स्तुति करने में लगे थे। बातचीत का अवसर न मिलने के कारण राजा रैवत वहाँ कुछ क्षण ठहर गये। उत्सव के अन्त में ब्रह्माजी को नमस्कार कर राजा रैवत ने बातचीत की। इसके पश्चात् पुत्री रेवती के लिए योग्य वर की बात चलाई।

ब्रह्माजी ने कहा- ''राजन्! वर के लिए जिन-जिन व्यक्तियों के तुमने नाम सुनाये हैं, वे अब काल के गाल में समा चुके हैं। जब तुम यहाँ आये थे तो संसार में सत्ययुग चल रहा था और जब पृथ्वी पर लौटोगे तो वहाँ द्वापर चल रहा होगा। अभी तो वहाँ त्रेतायुग चल रहा है। जब तुम जाओगे तो भगवान् विष्णु के अंशावतार महाबली बलराम अवतार ले चुके होंगे। तुम अपनी कन्या का पाणिग्रहण संस्कार उनसे करा लेना। वे ही इसके लिए उपयुक्त वर होगें।

रेवती की लम्बाई अधिक थी जिसके लिए बलराम ही उपयुक्त वर थे।

कथा वैसे सामान्य है, परन्तु समय के अन्तर वाला इसका अंश बडा विचित्र एवं रहस्यमय है।

ब्रह्मलोक का कुछ समय पृथ्वी के दो युगों के बराबर

हुआ। त्रेता और द्वापर युग क्रमशः 1296,000 और 864,000 वर्ष के होते हैं।

उदाहरण- (2) वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में एक प्रसंग आया है कि जब काक भुशुंडि जी राम के मुख में समा जाते हैं तो उन्हें वहाँ सौ कल्प (एक कल्प 432 करोड वर्षों के बराबर होता है) लग गये। इस समय के बीच में वहाँ अनेक ब्रह्माण्डों के दर्शन होते हैं। मुख के अन्दर सौ कल्प रहने के बाद जब वे मुख से बाहर आते हैं तो ज्ञात होता है कि पृथ्वी पर केवल दो घडी ही बीती है। दो घडी का अर्थ लगभग पौन घंटा है।

इस कथा में भी 'समय की सापेक्षता' का ही सिद्धान्त व्यक्त हुआ है। परंतु यहाँ सापेक्षता का रूप उल्टा है। पहले इन कथाओं को केवल कपोल-कल्पना मात्र ही समझा जाता था पर आईन्स्टीन की 'समय की सापेक्षता की खोज' के बाद स्थिति भिन्न हो गई है। यद्यपि इन कथाओं में अतिशयोक्ति हो सकती है पर यह तो निष्पक्ष रूप से स्वीकार करना ही पडेगा कि समय की सापेक्षता की कल्पना सर्वप्रथम भारतीय ऋषि-मुनियों ने की। श्रीमद् भागवत्गीता विश्व का एक अमूल्य ग्रंथ है। उसमें एक श्लोक 'समय की सापेक्षता' के सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है। यथा -

सहा - युग पर्यन्त महाय्येद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युग सहस्त्रान्तां तेऽहोरात्र विदोजनाः॥ (8/17)

('हे पार्थ! ब्रह्मा जी का जो एक दिन है, उसका भी हजार चौकडी युग तक अवधि वाला और रात्रि को भी हजार चौकडी युग तक अवधि वाला जो पुरुष तत्व से जानते हैं वे काल के तत्त्व को जानने वाले हैं।')

केवल अन्य ग्रहों में ही नहीं इस जगत में भी दो व्यक्तियों की समय संबंधी धारणा भिन्न हो सकती है। मान लीजिये आकाश से एक गोला पृथ्वी की धरातल पर गिरता है। दो व्यक्ति गोले के गिरने के स्थान से दो और तीन मील दूर खडे हैं हम यह नहीं कह सकते कि दोनों ने एक ही समय में गोला गिरते देखा है।

पहले व्यक्ति नें गोला गिरने के $^{2}/_{186000}$ सैकण्ड पश्चात् उसे देखा और दूसरे व्यक्ति ने $^{3}/_{186000}$ सैकण्ड पश्चात् उसे देखा क्योंकि प्रकाश की गति 186000 मील प्रति सैकण्ड है। प्रकाश की अपनी गति के कारण दोनों उसे भिन्न-भिन्न समय पर देखेंगे।

ब्रह्माण्ड की आयु के लिए, ब्रह्माण्ड में होने वाले परिवर्तनों को नापने के लिए बडी इकाइयों की आवश्यकता पडेगी। अतः आगे के लिए युग का माप है -

1) कलियुग - 432000 वर्ष

2) कलियुग-द्वापरयुग - 864000 वर्ष

3) कलियुग-त्रेतायुग - 1296000 वर्ष
4) कलियुग-सत्युग - 1728000 वर्ष
चारों युगों की एक चतुर्युगी - 4320000 वर्ष
71 चतुर्युगी का एक मन्वन्तर - 3067000 + 1728000
संध्यांश 14 मन्वन्तर तथा संध्यांश के 15 सत्युग का एक कल्प याने -

$$\text{वर्ष} = \frac{432 \times 10^7 \text{ वर्ष}}{4320000000}$$

एक कल्प याने ब्रह्मा का एक दिन, उतनी ही बडी उनकी रात, इस प्रकार 100 वर्ष तक एक ब्रह्मा की आयु और जब एक ब्रह्मा मरता है, तो भगवान् विष्णु का एक निमेष (आँख की पलक झपकने के काल को निमेष कहते हैं) होता है और विष्णु के बाद रुद्र का काल आरंभ होता है, जो स्वयं काल रूप है और अनन्त है, इसीलिए कहा जाता है कि काल अनन्त है।

वर्षमान - पृथ्वी सूर्य के आस-पास लगभग एक लाख कि.मी. प्रति घण्टे की गति से 966000000 कि.मी. लम्बे पथ का 365 ½ दिन में एक चक्र पूरा करती है। इस काल को ही वर्ष माना गया है।

युगमान - 432000 वर्ष में सातों ग्रह अपने भोग और

शर को छोडकर एक जगह आते हैं। इस युति काल को कलियुग कहा गया है। दो युति को द्वापर, तीन युति को त्रेता तथा चार युति को सत्‌युग कहा गया।

चतुर्युगी में सातों ग्रह भोग एवं शर सहित एक ही दिशा में आते हैं।

वर्तमान कलियुग का आरंभ भारतीय गणना से, ईसा से 3102 वर्ष पूर्व 20 फरवरी को 2 बजकर 17 मिनट 30 सैकण्ड पर हुआ था। उस समय सभी ग्रह एक ही राशि में थे। इस संदर्भ में यूरोप के प्रसिद्ध खगोलवेत्ता बेली का कथन दृष्टव्य है।

''हिन्दुओं की खगोलीय गणना के अनुसार विश्व का वर्तमान समय याने कलियुग का आरंभ ईसा के जन्म के 3102 वर्ष पूर्व 20 फरवरी को 2 बजकर 17 मिनिट तथा 30 सैकण्ड पर हुआ था। इस प्रकार यह काल गणना मिनिट तथा सैकण्ड तक की गई। आगे वे याने हिन्दु कहते हैं, कलियुग के समय सभी ग्रह एक ही राशि में थे तथा उनके पंचाग या टेबल भी यही बताते हैं। ब्राह्मणों द्वारा की गयी गणना हमारे खगोलीय टेबल द्वारा पूर्णतः प्रमाणित होती है। इसका कारण और कोई नहीं, अपितु ग्रहों के प्रत्यक्ष निरीक्षण के कारण यह समान परिणाम निकला है।''

वैदिक ऋषियों के अनुसार वर्तमान सृष्टि पञ्चमण्डल क्रम

वाली है। चंद्र मण्डल, पृथ्वी मण्डल, सूर्य मण्डल, परमेष्ठी मण्डल और स्वयंभू मण्डल। ये उत्तरोत्तर मण्डल का चक्कर लगा रहे हैं।

मन्वन्तर मान :- सूर्य मण्डल के परमेष्ठी मण्डल (आकाश गङ्गा) के केंद्र का चक्र पूरा होने पर उसे मन्वन्तर काल कहा गया है। इसका माप 306700000 (तीस करोड सडसठ लाख वर्ष) एक से दूसरे मन्वन्तर के बीच एक संध्यांश सतूयुग के बराबर होता है। अत: संध्याशं सहित मन्वन्तर का माप हुआ 30 करोड 84 लाख 28 हजार वर्ष। आधुनिक वर्ष के अनुसार सूर्य 25 से 27 करोड वर्ष में आकाश गङ्गा के केंद्र का चक्र पूरा करता है।

कल्प :- परमेष्ठी मण्डल स्वयंभू मण्डल का परिभ्रमण कर रहा है याने आकाश गङ्गा अपने से ऊपर वाली आकाश गङ्गा का चक्कर लगा रही है। इस काल को कल्प कहा गया है। याने इसका माप है 4 अरब 32 करोड (4320000000) वर्ष। इसे ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है। जितना बडा एक दिन उतनी बडी रात अत: ब्रह्मा का अहोरात्र याने 864 करोड वर्ष हुआ।

ब्रह्मा का वर्ष याने 31 खरब 10 अरब 10 करोड वर्ष ब्रह्मा की आयु, ब्रह्माण्ड की आयु 31 नील 10 खरब 40 अरब (31,10,4000000000) वर्ष।

ब्रह्मा का एक दिन (अहोरात्र)
= 2 ×432000,0000=864000,0000 वर्ष, ब्रह्मा का एक वर्ष =864000,0000 ×30 ×12
= 311040000,0000 वर्ष, ब्रह्मा की आयु 100 वर्ष है अतः ब्रह्मा की आयु
=311040000,0000 ×360=1119744,0000,0000,0 वर्ष।

जैन धर्मानुसार दीर्घ काल की गणना निम्नोक्त है

व्यवहार पल्य के वर्ष -

1 योजन प्रमाण गोल व गहरे गर्त में एक से सात दिन तक के उत्तम भोगभूमियों में भेड के बच्चे के बालों के अग्रभागों का प्रमाण × 100 वर्ष

$= \frac{1}{4} \pi \times 4^3 \times 2000^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 6^3 \times 500^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3$

= 45 अक्षर प्रमाण बालाग्र×100 वर्ष अथवा- 4134,5263,0308,2031,7774,9512,192 000000000000000000 × 100 वर्ष व्यवहार पल्य के

समय -

उपरोक्त प्रमाण वर्ष 2 × 3 × 2 × 2 × 15 × 30 × 2 × 38½ × 7 × 7 × (आवली प्रमाण संख्यात) × (जघन्य युक्ता संख्यात) समय।

*उद्धार पल्य के समय = उपरोक्त 45 अक्षर प्रमाण रोम राशी × असंख्यात करोड वर्षों के समय।

*अद्धा पल्य के समय = उद्धार पल्य के उपरोक्त समय × असंख्यात वर्षों के समय

*व्यवहार, उद्धार या अद्धा सागर = 10 कोडा कोडी विवक्षित पल्य।

*एक अवसर्पिणी काल या एक उत्सर्पिणी काल = 10 कोडा कोडी अद्धा सागर वर्ष।

*1 कल्प काल = एक अवसर्पिणी या एक उत्सर्पिणी।

*1 युग = 2 कल्प काल (अवसर्पिणी+उत्सर्पिणी)।

*एक अवसर्पिणी या एक उत्सर्पिणी = छह काल = सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दुषमा, दुषमा-सुषमा, दुषमा, दुषमा-दुषमा।

*सुषमा-सुषमा काल = 4 कोडा कोडी अद्धा सागर वर्ष।

*सुषमा काल = 3 कोडा कोडी अद्धा सागर वर्ष।

*सुषमा-दुषमा काल = 2 कोडा कोडी अद्धा सागर वर्ष।

*दुषमा-सुषमा काल = 42000 वर्ष कम 1 कोडा कोडी अद्धा सागर वर्ष।

*दुषमा काल = 21000 वर्ष।

*दुषमा-दुषमा काल = 21000 वर्ष।

विभिन्न जीवों की आयु :-

तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट स्थिति 3 पल्य और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। पृथ्वीकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु 22 हजार वर्ष, जलकायिक जीवों की 7 हजार वर्ष, वनस्पतिकायिक जीवों की 10 हजार वर्ष, वायुकायिक जीवों की 3 हजार वर्ष, पक्षियों की 72 हजार वर्ष, सर्पों की 42 हजार वर्ष, तीन इंद्रिय जीवों की 49 दिन, अग्निकायिक जीवों की 3 दिन, चौइंद्रिय जीवों की 6 मास, छाती से सरकने वाले अजगर आदि जीवों की 9 पूर्वाङ्ग, दोइंद्रिय जीवों की 12 वर्ष, असंज्ञी पञ्चेंद्रिय तिर्यञ्च, मच्छ, कर्मभूमिज चौपाये 1 करोड पूर्व वर्ष, जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भोगभूमिज के मनुष्य तथा तिर्यञ्चों की क्रम से 1 पल्य, 2 पल्य, 3 पल्य तथा कुभोगभूमिज मनुष्य और तिर्यञ्चों की 1 पल्य प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है।

असुर कुमार, नागकुमार,सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेष भवनवासियों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से 1 सागर, 3 पल्य, 2½ पल्य, 2 पल्य, 1½ पल्य प्रमाण है।

सौधर्म और ऐशान कल्प में 2 सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है। सानतुकुमार और माहेन्द्र कल्प में 7 सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर युगल से लेकर

प्रत्येक युगल में आरण, अच्युत तक क्रम से साधिक 3 से अधिक 7 सागरोपम, साधिक 7 से अधिक 7 सागरोपम, साधिक 9 से अधिक 7 सागरोपम, साधिक 11 से अधिक 7 सागरोपम, साधिक 13 से अधिक 7 सागरोपम, साधिक 15 से अधिक 7 सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है। आरण अच्युत के ऊपर 9 ग्रैवेयक में से प्रत्येक में, 9 अनुदिश में, 4 विजयादिक में क्रमशः 22 सागर से एक-एक सागर अधिक उत्कृष्ट स्थिति है। तथा सर्वार्थसिद्धि में पूरी 33 सागर स्थिति है। सौधर्म और ऐशान कल्प में जघन्य स्थिति साधिक 1 पल्य है। आगे-आगे पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति अनन्तर-अनन्तर की जघन्य स्थिति है।

उपर्युक्त आयु संबंधी वर्णन कर्म परतन्त्रता से युक्त अशुद्ध संसारी जीवों की है। परंतु संपूर्ण कर्म परतंत्रता/बंधन से रहित शुद्ध मुक्त जीवों की आयु अक्षय-अनन्त-शाश्वतिक है। इस शोध प्रबंध में अन्यत्र वर्णन किया गया है कि सिद्ध जीव एक समय में 14 राजु (असंख्यात प्रकाशवर्ष) गमन करते हैं। सिद्धों की परम गति है तथा आयु (कर्म निरपेक्ष शुद्ध आत्मा का स्थिति काल) भी परम है। पूर्व में यह भी वर्णन किया गया है कि निम्नस्तरीय स्वर्ग के देवों की आयु से उत्तरोत्तर उच्च स्तरीय देवों

की आयु अधिक है तथा उनकी ऋद्धि, सुख, वैभव, ज्ञान तथा गति करने की शक्ति भी अधिक है। उपर्युक्त विस्तृत विषयों के वर्णन के सद्भाव से भी हमें "**प्रकाश की गति से गमन करने वालों की आयु में वृद्धि नहीं होगी एवं परिवर्तन शुन्य हो जायेगा**" इसके कार्य-कारण सिद्धान्त, गणित, प्रयोग यथार्थ रूप से मुझे परिज्ञान नहीं हैं और इसके लिए वैज्ञानिक आईन्स्टीन ने कोई ठोस-प्रामाणिक, प्रायोगिक कार्य-कारण सिद्धान्त, गणित एवं प्रयोग नहीं दिये हैं।

आईन्स्टीन के मतानुसार यदि किसी वस्तु का वेग प्रकाश के वेग का $^9/_{10}$ हो तो उस वस्तु की लम्बाई गति की दिशा में आधी रह जाती है और कोई पिण्ड प्रकाश के वेग के बराबर चल सके तो उसके लिए समय ठहर जाता है। इस संदर्भ में "**जुडवाँ बच्चों के विरोधाभास**" संबंधी कुछ जिज्ञासायें निम्न प्रकार की हैं -

1) लम्बाई आधी क्यों और कैसे रह जाती हैं ?

2) लम्बाई आधी रह जाती है तब परमाणु, फोटोन आदि की लम्बाई आधी कैसे होगी ?

3) "समय ठहर जाता है" इसका अर्थ, रहस्य क्या है ? जो प्रकाश सुदूर (लाखों प्रकाश वर्ष दूर) आकाशीय पिण्ड से आ

रहा है, जो कि विज्ञान मानता है इसका फिर रहस्य/ अर्थ/परिणाम, गणित क्या है?

4) अंतरिक्ष के बच्चे की आयु में परिवर्तन क्यों और कैसे नहीं होगा ? उस बच्चे के शारीरिक/मानसिक/जैविक परिवर्तन होगा या नहीं ? यदि परिवर्तन नहीं होगा तो उसके कारण क्या है ? इसका प्रयोग क्या है ?

कुछ वैज्ञानिक मान्यतानुसार वास्तविक समय एवं आकाश नहीं है।

5) यदि वास्तविक समय एवं आकाश नहीं है तो समय एवं आकाश शब्द का अस्तित्व कैसे संभव है ? क्योंकि वाच्य-वाचक संबंध वस्तु एवं शब्द में होता है। दो वस्तु या आकाशीय पिण्ड जिस आधार में रहते हैं, वे दो भिन्न वस्तु या आकाशीय पिण्ड की दूरी किसके कारण है? और वह दूरी/अन्तर क्या है ? क्या संपूर्ण ब्रह्माण्ड में भी कभी भी किसी भी अपेक्षा से जो अविद्यमान/ अवास्तविक/असत्य वस्तु है, उसका व्यवहार, कथन, सापेक्षता सिद्धान्त, गणित संभव है ?

प्रत्येक द्रव्य गुण, पर्याय और शक्तियों का अखण्ड पिण्ड है। विश्व के मूलभूत षट् द्रव्यों में से जीव एवं पुद्गल स्थानान्तारित गति क्रिया-शक्ति से युक्त है अर्थात् दोनों द्रव्य अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग कारणों को पाकर लोकाकाश में गमनागमन करते हैं। जीव की स्वभाविक गति का

प्रतिपादन करते हुए आचार्य श्री नेमीचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ति ने द्रव्यों के विभिन्न पहलुओं का संक्षिप्त सार गर्भित प्रतिपादन "द्रव्य संग्रह" शास्त्र में उल्लेख करते हुए कहा है कि - **"विस्ससोड्ढगई"** अर्थात् जीव की स्वाभाविक गति ऊर्ध्व गमन स्वरूप है। अमृतचंद्र सूरी तत्वार्थसार में जीव एवं पुद्गल के स्वभाव का वर्णन करते हुए उल्लेख करते हैं कि -

ऊर्ध्वगौरव धर्माण: जीवो इति जिनोत्तमैः ।
अधोगौरव धर्माण: पुद्गला इति चोदितं ॥

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जिनेंद्र भगवान् ने जीव को ऊर्ध्व गौरव (ऊर्ध्व गुरुत्व) धर्म वाला बताया है और पुद्गल को अधो गौरव (अधो गुरुत्व) धर्म वाला प्रतिपादित किया है।

जीव की स्वाभाविक गति ऊर्ध्व से ऊर्ध्व गमन करने की है। पुद्गल (Matter) की स्वाभाविक गति नीचे से नीचे की ओर है। कारण यह है कि जीव के अमूर्तिक (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, वजन (द्रव्यमान) से रहित) एवं स्थानान्तरित रूप गति क्रिया-शक्ति से युक्त होने के कारण उस की गति ऊर्ध्व गमन होना स्वाभाविक है।

जब शुद्ध परमाणु या शुद्धात्मा आकाशीय श्रेणी में सीधा गमन करते हैं तब एक समय में 14 राजु गमन करते हैं। उस अवस्था में यात्रा के प्रथम प्रदेश, अंतिम प्रदेश एवं मध्य के प्रदेशों को समय भेद से परमाणु या शुद्धात्मा स्पर्श नहीं करते हैं, अतिक्रमण/पार नहीं

करते हैं, परंतु एक ही समय में एक साथ कर लेते हैं। इस दृष्टि से समय एवं गति शुन्य या स्थिर हो जाते हैं या एक हो जाते हैं। तथापि वहाँ सूक्ष्म परिणमन रूपी क्रिया एवं गति क्रिया दोनों होती हैं, परंतु इन सूक्ष्म क्रियाओं को अल्पज्ञ नहीं देख सकता है, न समझ सकता है; इसे केवल सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ही देख सकते हैं। इसे आईन्स्टीन ने भी स्वीकार किया है।

We can only know the partial truth, but not the absolute trouth.

What is the absolute truth ? Einsten says, "We can only know the relative truth that mians pratial truth, the real truth is known only to universial observer." Universial observer of Einsten is nonilse but the Almighty ("Sarvajnadiva") with powers of knowledge and bliss.

गति के लिए धर्म द्रव्य कालादि कारण –

धर्म द्रव्य के विद्यमान रहते हुए भी मत्स्यों की गति में जल के समान तथा मनुष्यों की गति में गाडी पर बैठना आदि के समान, पुद्गल की गति में बहुत से सहकारी कारण होते हैं।

''पुद्गल करणा जीवा खंदा खलु कालकरणा दु'' ऐसा

कहा है। इसका अर्थ यह हैं कि धर्म द्रव्य के विद्यमान होते हुए भी जीवों की गति में कर्म-नोकर्म रूप पुद्गल सहकारी कारण होते हैं और अणु तथा स्कंध इन भेदों से भेद को प्राप्त हुए पुद्गलों के गमन में काल द्रव्य सहकारी कारण होता है।

III महा विस्फोट, ब्रह्माण्ड-प्रतिब्रह्माण्ड, विस्तारशील ब्रह्माण्ड के सिद्धान्तों का पुन: परीक्षण -

आईन्स्टीन तथा अनेक वैज्ञानिक मतानुसार महाविस्फोट से ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई है। आईन्स्टीन के सापेक्ष सिद्धान्त के मतानुसार ब्रह्माण्ड है और ब्रह्माण्ड के प्रतिपक्षभूत प्रतिब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड का आकाश वक्राकार है जो कि सीमित है परंतु प्रतिब्रह्माण्ड असीमित है, परंतु ब्रह्माण्ड एवं प्रतिब्रह्माण्ड की निश्चित सीमा एवं उसके आकार-प्रकार के बारे में न स्वयं आईन्स्टीन एवं अभी तक कोई भी वैज्ञानिक निर्णयात्मक रूप से सिद्ध कर पाये हैं। आईन्स्टीन के अनुसार ब्रह्माण्ड विस्तारशील है।

अभी तक कोई वैज्ञानिक किस निश्चित समय में किन निश्चित कारणों से महाविस्फोट हुआ यह सिद्ध करने में असमर्थ है। कुछ प्रमाण महाविस्फोट सिद्धान्त के पक्ष में कुछ वैज्ञानिक देते हैं तो

कुछ वैज्ञानिक इसके विरुद्ध प्रमाण दे रहे हैं। वैज्ञानिक नार्लिकर आदि महाविस्फोट सिद्धान्त को नहीं मानते हैं वे विश्व को अनादि अनन्त स्थायी मानते हैं। इस संबंधी मेरी (आ.कनकनंदी)दीर्घ चर्चा नार्लिकर के साथ 2000 में हुई थी। इसका विस्तृत वर्णन ''विश्व प्रतिविश्व एवं श्यामविवर'' पुस्तक में मैंने किया है। जैन धर्म में वर्णित ब्रह्माण्डीय विज्ञान में भी विश्व को महाविस्फोट से निर्मित नहीं स्वीकारा है।

ब्रह्माण्ड का आकार कुछ वैज्ञानिक पञ्चभुजीय या टावरनुमा जैसे मानते हैं। परंतु उसका विस्तार, घनफल एवं आकार का निर्णयात्मक ज्ञान अभी भी वैज्ञानिकों को नहीं है। इतना ही नहीं ब्रह्माण्ड अनन्त अन्तरिक्ष के किस बिन्दु पर (स्थान, क्षेत्र) है इसका भी पूर्ण परिज्ञान नहीं है । जैन ब्रह्माण्डीय विज्ञान के अनुसार अनन्त आकाश के बीचों बीच 343 घनराजु प्रमाण मनुष्याकृति (टावरनुमा) लोक (ब्रह्माण्ड) है जिसके दसों दिशाओं में अनन्तानन्त आकाश फैला हुआ है। इस गणितिय दृष्टि से यह सिद्ध हो जाता है लोक (ब्रह्माण्ड) अलोकाकाश (प्रतिब्रह्माण्ड) के बीचों बीच है। क्योंकि ब्रह्माण्ड के दसों दिशाओं में समान-समान अनन्त-अनन्त आकाश होने से ब्रह्माण्ड अन्तरिक्ष के बीचों बीच अर्थात् केन्द्र बिन्दु में होना रेखा गणित के अनुसार सिद्ध हो जाता है। इसका विस्तृत वर्णन मैंने मेरे 1) ''विश्व विज्ञान रहस्य'' 2)

अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा'' में किया है। इस दृष्टि से लोक (ब्रह्माण्ड) का आकाश सीमित है और कथञ्चित् वक्र भी है, किंतु आकाश अमूर्तिक, अखण्ड द्रव्य होने से आकाश का वक्र होना या खण्डित होना संभव नहीं है।

आईन्स्टीन आदि वैज्ञानिकों ने सार्वभामीय गति/समस्त द्रव्यों की गति के लिए साधारण माध्यम ईथर को माना है। ईथर की पूर्ण परिभाषा अभी तक किसी भी वैज्ञानिकों ने नहीं दी है। जैन धर्मानुसार धर्म द्रव्य, जीव, पुद्गलों की गति के लिए उदासीन सामान्य माध्यम है। धर्म द्रव्य अमूर्तिक, अखण्ड, सम्पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त रहने वाला शुद्ध द्रव्य है। धर्म द्रव्य के प्रतिपक्षभूत या स्थिति माध्यम के लिए कारणभूत अधर्म द्रव्य भी है जो कि धर्म द्रव्य के समान ही अमूर्तिक, अभौतिक शुद्ध एवं लोकाकाश व्यापी है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में गति एवं स्थिति के लिए उपर्युक्त दोनों द्रव्य कारण होने से ये दोनों द्रव्य साधारण गति एवं स्थिति माध्यम हैं। इन दोनों द्रव्यों के बिना ब्रह्माण्ड में जीव एवं पुद्गल की गति एवं स्थिति संभव नहीं है। विश्व शाश्वतिक होने से एवं प्रति ब्रह्माण्ड की अवस्था/स्थिति प्राकृतिक रूप से अनादि काल से होने से ब्रह्माण्ड की सीमा का विस्तार संभव नहीं है।

क्योंकि ब्रह्माण्ड के आगे उपर्युक्त दोनों द्रव्यों का अभाव है। इस दृष्टि से आईन्स्टीन ने ब्रह्माण्ड को जो विस्तारशील माना है वह संभव नहीं है। हाँ, परंतु अन्य अनेक दृष्टियों से ब्रह्माण्ड की सृष्टि संभव है, विज्ञान संभव है, परिणमन संभव है।

जैसा कि प्रत्येक द्रव्य, उत्पात (उत्पत्ति) व्यय (नाश) ध्रौव्य (स्थिरता) से युक्त होने से ब्रह्माण्ड का भी उत्पात, नाश एवं स्थायित्व संभव है। अन्य एक दृष्टिकोण से उत्सर्पिणी (विकासशील युग) तथा अवसर्पिणी (ह्रासोन्मुखी युग) काल के परिवर्तन से विश्व के कुछ भाग में विकास एवं ह्रास होता रहता है। इतना ही नहीं कुछ परिवर्तनशील ब्रह्माण्ड के भाग में प्रलय (नाश, विध्वंस) भी होता रहता है। यह परिणमन स्थूल रूप में होता रहता है परंतु प्रत्येक द्रव्य में प्रत्येक समय 1) अनन्त गुण वृद्धि 2) असंख्यात गुण वृद्धि 3) संख्यात गुण वृद्धि 4) संख्यात गुण हानि 5) असंख्यात गुण हानि 6) अनन्त गुण हानि रूपी षट्गुण वृद्धि हानि रूप परिणमन होता रहता है। विश्व रूपी महास्कंध में स्थित अनन्तानन्त परमाणु तथा 23 वर्गणाओं में परिणमन, परिस्पंदन, गति एवं स्थिति होती रहती है। विश्व के किसी एक भाग में उत्पन्न शक्तिशाली तरङ्ग भी विश्व के अन्तिम छोर तक गति करके पुनः वापिस भी आती है। इन सब दृष्टियों से विश्व विस्फोटशील है, विस्तारशील है तथा संकोचशील भी है।

अन्तरिक्ष में हमारे सौरमण्डल को छोडकर कुछ सौरमंडल ऐसे भी हैं, जो पूरी तरह प्रति पदार्थ के बने हैं और उनमें समय का प्रवाह हमसे विपरीत दिशा में होता है। प्रति पदार्थ में पॉजिट्रान का बाहुल्य होता है। साथ ही वैज्ञानिकों ने टेक्योन नामक ब्रह्माण्डीय कणों की कल्पना की है, जो प्रकाश के कणों से भी तीव्र गति से चलते हैं।

IV *आकाश में चतुआयामी गति (चतुआयामी गति सिद्धान्त का पुनः परीक्षण)*

आधुनिक विज्ञान ने आकाश की लम्बाई, चौडाई और गहराई को तीन आयाम कहा है। पदार्थ का अस्तित्व, गति और व्यवहार इन तीन आयामों के साथ जाना जाता है। आईन्स्टीन ने तीन आयामों के साथ काल को चौथा आयाम माना है लेकिन आगम के अनुसार सूक्ष्म पदार्थ की गति आकाश के चार आयामों में होती है। इसमें काल को सम्मिलित नहीं किया गया है। जैन आगम के अनुसार जीवों के मरण के उपरान्त अन्य गति में जन्म लेने के लिए जीवों की जो विग्रह गति होती है उस गति में जीव दिशा, विदिशा और अनुदिशा में गमन करते हैं। इस दृष्टि से आकश के चार आयाम फलित होते हैं। केवली समुद्घात के समय कर्म परमाणुओं के

साथ-साथ आत्मप्रदेशों का आठ समय में 1) दण्ड 2) कपाट 3) प्रतर 4) लोकव्यापी 5) संकोचरूप में विपरीत क्रम से संहरण 6) प्रतर, प्रस्तर का संहरण 7) कपाट का संहरण 8) दण्ड का संहरण होता है और पूर्ववत् देह में स्थित हो जाते हैं। इस दृष्टि से भी आकाश के चार आयाम सिद्ध होते हैं।

V *ईथर के सिद्धान्त का पुनः परीक्षण :-*

आईन्स्टीन आदि वैज्ञानिकों ने गति के लिए सर्वसाधारण माध्यम ईथर को माना है। परंतु अभी तक वैज्ञानिकों ने निर्णयात्मक रूप से नहीं जान पाये हैं कि ईथर के गुण धर्म एवं स्वरूप क्या है ? तथापि वैज्ञानिक मानते हैं कि प्रकाश, फोटोनकण आदि की गति के लिए भी ईथर की आवश्यकता है। यथा -

Some ether scientists argue that light is a wave disturbance transmitted through the ether, while others argue that photons are produced locally when an either excitation wave interacts with matter. In either case, the wave speed would be expected to very within certain limits according to the density of the ethric medium the lower the density, the higher the speed.

"The first problem was, of course, that if light waves were real waves, they must be waves in something. They were plainly not waves in matter; it was necessary, therefore, to invent something else, which was not matter, for them to be waves in. This something they called the 'ether',. and imagined it as an utterly thin elastic fluid, that flowed undisturbed between the particles of the material Universe and filled all 'empty space' of every kind.

What was this ether like? Difficulties and contradictions appeared at once. For it was proved to be: (1) thinner than the thinnest gas; (2) more rigid than steel; (3) absolutely the same everywhere; (4) absolutely weightless; and (5) in the neighbourhood of any electron, immensely heavier than lead."

प्रथम समस्या यह है कि यदि प्रकाश की तरङ्ग वस्तुत: तरङ्ग है तो वे निश्चय ही किसी वस्तु में हैं। साधारणतया ये तरङ्गे

भौतिक नहीं हैं। इसलिए अविष्कार की आवश्यकता हो जाती है कि कोई वस्तु होनी चाहिए जो कि अभौतिक है, जिससे उसमें तरङ्गे हैं। या कुछ वस्तु को जिसे वैज्ञानिक ईथर नाम से पुकारते हैं एवं कल्पना करते हैं कि यह स्पष्टता से पतला एवं विद्युत् प्रवाह वाला है। इस प्रवाह का भौतिक विश्व के मध्य में किन्हीं अंशों अणुओं द्वारा विक्षोभ नहीं होता है एवं सम्पूर्ण शून्य प्रदेश में भरा है।

किस प्रकार का यह ईथर है ? इस संबंध में अनेक प्रश्न उठते हैं। इन प्रश्नों का समाधान करना कठिन है। इसे सिद्ध करने के लिए वैज्ञानिकों ने कुछ तथ्य दिये हैं - 1)पतली से पतली गैस से भी पतला है ; 2)इस्पात से भी अधिक कठिन है; 3) सम्पूर्ण रूप से प्रत्येक स्थान में समान हैं; 4) सम्पूर्ण रूप से भार शून्य है; 5) इलेक्ट्रॉन के निकट सम्बन्ध में सीसे से भी अधिक भारी हैं।

अभी तक तो वैज्ञानिकों ने सर्वसाधारण गति माध्यम के लिए किसी निर्णयात्मक सत्य-तथ्य पूर्ण सिद्धान्त में पहुँच नहीं पाये हैं, परंतु महान आध्यात्मिक वैज्ञानिक, सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी तीर्थङ्कर भगवान् ने सर्वसाधारण गति माध्यम रूप द्रव्य का सम्पूर्ण शोध-बोध करके दिव्य ध्वनि के माध्यम से प्रतिपादन किया था कि समस्त द्रव्यों के साधारण गति माध्यम एक द्रव्य है जिसे धर्म द्रव्य कहा जाता है। यह धर्म द्रव्य अमूर्तिक, शाश्वतिक शुद्ध, अनन्त गुण-धर्म, शक्ति

एवं पर्यायों से युक्त अखण्ड, अभेद्य एवं सम्पूर्ण लोकाकाश (ब्रह्माण्ड) में सर्वत्र समान रूप में व्याप्त है। यथा -

गइ परिणयाण धम्मो पुग्गल जीवाण गमण सहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥ 17 द्रव्य संग्रह

As water assists the movement of moving fish so Dharama assists the movement of moving Pudgala and Jiva· (But) it does not inspire move Pudgala and Jiva which are not moving.

जैसे पानी मछलियों को गमन करने में सहायक है उसी प्रकार धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों को गमन करने में सहायक है किंतु गमन नहीं करते हुए जीव एवं पुद्गल को गमन में सहकारी नहीं है।

वैज्ञानिक रीच ने भी आईन्स्टीन आदि वैज्ञानिकों के विपरीत या भिन्न सर्वसाधारण गति माध्यम का शोध-बोध किया था परंतु जिस प्रकार महान् दार्शनिक सुकरात, ईसामसीह आदि के प्रति तात्कालीन राजा आदि ने जैसा दुर्व्यवहार किया उन्हें सताया, उनके सिद्धान्तों को गलत सिद्ध किया गया और यहाँ तक कि उन्हें मृत्यु दण्ड तक दिया गया। उसी प्रकार रीच के साथ भी व्यवहार हुआ जो कि महान् वैज्ञानिक आईन्स्टीन की गरिमा के विपरीत

तथा मलीन करने वाला है और सत्य, समता, शांति, प्रगति, विज्ञान, वैज्ञानिक एवं मानव समाज के लिए अपमान जनक, कलंक है। वैज्ञानिक रीच ने जो गति माध्यम का शोध-बोध किया था उसकी समानता ऊपर लिखित जैन धर्म के गति माध्यम स्वरूप धर्म द्रव्य के साथ कुछ मेल खाती है। रुस के वैज्ञानिक कैरेनो ने सिद्ध किया कि कुछ विशिष्ट माध्यम में स्वयं प्रकाश का वेग भी 3×10^{10} से.मी /सैकण्ड से अधिक हो सकता है; लेकिन निर्वात में प्रकाश वेग इतना ही होगा। निम्न में रीच के सिद्धन्त एवं उसके साथ घटित घटनाओं का वर्णन कर रहें हैं।

आधुनिक भौतिक की ''क्वाण्टम गतिकी'' जिसे वैज्ञानिक मैक्स प्लांक, नील्स, बोहर, लुईस, दे ब्रोगली, श्रोडिंगर, हाइजनबर्ग, बोर्न तथा पौली ने विकसित किया, के अनुसार एक गतिशील कण किन्हीं परिस्थितियों में एक कण की भांति व्यवहार करता है तथा किन्हीं परिस्थितियों में एक तरङ्ग के भांति। किसी गतिशील कण की सही स्थिति तथा सही वेग का हम एक साथ पता नहीं कर सकते हैं। इनमें से यदि एक का मान ठीक से ज्ञात कर भी लिया जाय तो दूसरे के मान में कुछ अनिश्चितता रहती है। किसी गतिशील कण की सही स्थिति तथा वेग को हम एक साथ नहीं जान सकते। उसकी प्रायिकता (प्राबेबिलिटि) ही ज्ञात की

जा सकती है। जैन दर्शन के अनुसार परमाणु की स्वाभाविक गति सरल रेखा में है और वैभाविक गति वक्र रेखा में। परमाणु कम से-कम एक समय में एक आकाश-प्रदेश का अवगाहन कर सकता है। और अधिक से अधिक उसी समय में चतुर्दश रज्ज्वात्मक समुचे विश्व का। स्पष्ट है कि अणु-परमाणु कण के गति-संबंधी विचारों में दर्शन और विज्ञान में समानता भी है और असमानता भी, क्योंकि आधुनिक विज्ञान के अनुसार इलेक्ट्रॉन की गति गोलाकार है।

Reich discovered a universal form of nonelectromagnetic, etheric energy – which he named **'orgone energy'**. He showed that it could be detected optically, thermally, electroscopically, and by means of radiation counters, in the atmosphere, the soil, living systems, and in a vacume. He found that it could be concentrated in metal-lined enclosures, or orgone accumulators (ORACs), and that the orgone concentration could be increased by surrounding the inner metal box with several alternating layers of conductors and insulators.

Einstein once declared that classical thermodynamics would 'never be overthrown'. Ironically, the theory was overthrown right under his nose but he was blind to the evidence.

Yet while Einstein was canonized, Reich was persecuted and branded a crank. In 1956 the Federal Food and Drug Administration obtained a court injunction which ruled that orgone **'does not exist',** that all books and journals containing detailed discussions of orgone should be destroyed, and that related devices should be dismantled or destroyed. **The FDA proceeded to incinerate all of Reich's books mentioning orgone – just as the Nazis had burned his books in the 1930s. Reich was later imprisoned for contempt of court, and died in jail in 1957. The FDA continued to burn his books until the early 1960s.**

Building on Reich's pioneering experimental and theoretical work, the Correas have developed a highly detailed and quantitative model of a dynamic ether. They have also developed technological applications, such as their patented over-unity Pulsed Abnormal Glow Discharge (PAGD) electricity-generating reactors, and their self-sustaining ether motor, which can even operate by drawing bioenergy direct from the human body. Like various other researchers, they have also demonstrated that gravity can be controlled by electromagnetic means.

Eugene Mallove has witnessed and examined some of the Correas' remarkable discoveries and inventions, and writes as follows about the proposal of a universal energetic ether:

This is not all that much more than mainstream physicists claim when they speak of cosmic **'dark matter,' 'dark en-**

ergy,' 'quintessence,' or the like comprising the vast bulk of the universe. The main difference is that the Correas provide concrete, falsifiable, table-top experiments to bolster their claims. In the tradition of Einstein's famous 'gedanken' [thought] experiments that so set back physics, Theory-of-Everything speculators today in mainstream physics pose ever more esoteric mathematical sand castles (*e.g.* string theory), almost none of which can be checked with experiments.

उपर्युक्त वर्णन से हमें विभिन्न शिक्षा लेकर सत्य की खोज में आगे बढना चाहिए। यथा -

1) सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवान् को छोडकर कोई भी साधारण मनुष्य से लेकर महान् वैज्ञानिक तक सम्पूर्ण परम सत्य को जान नहीं सकते हैं। इसलिए किसी भी वैज्ञानिकों द्वारा शोध-बोध, अविष्कृत, प्रतिपादित सिद्धान्तों को अन्तिम सत्य नहीं मानना चाहिए। (कुछ अपवाद को छोडकर यह प्रवृत्ति वैज्ञानिक एवं विज्ञान में है जो कि उचित है)

2) यह कोई जरूरी नहीं कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक जो शोध-बोध करते हैं उनसे श्रेष्ठ शोध-बोध कोई अप्रसिद्ध वैज्ञानिक नहीं कर पायेगा। यथा-स्वयं आईन्स्टीन, न्यूटन, एडीसन आदि वैज्ञानिक पहले प्रसिद्ध नहीं थे परंतु उन्होंने अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिकों से भी अधिक श्रेष्ठ कार्य कर पाए।

3) हमें सतत्, सनम्र सत्यग्राही बनना चाहिए। Right is Mine अर्थात् "**जो खरा है सो मेरा है**" स्वीकार करना चाहिए न कि Mine is right "**मेरा है सो खरा है**" को मानना चाहिए।

4) सत्य को स्वीकार करना ही चाहिए परंतु केवल इंद्रियों या यंत्रों के द्वारा देखा हुआ सिद्धान्त को ही सत्य नहीं मानना चाहिए क्योंकि इंद्रिय एवं यंत्र में सीमित शक्ति होने के कारण, तथा इनकी शक्ति, क्षेत्र भौतिक होने के कारण इससे हम अमूर्तिक (अभौतिक) आध्यात्मिक, असीम, अनन्त, गुण-धर्म, अवस्था, इयत्ता को ना देख सकते हैं, न जान सकते हैं, न परीक्षण कर सकते हैं। वैज्ञानिक सिद्धान्त स्थूलत: व्यवहार दृष्टि से सही होने पर भी सूक्ष्मत: निश्चय दृष्टि से सत्य होना कोई अनिवार्य नहीं है।

5) स्कंध (Mass) से भी अधिक शक्ति जिस प्रकार शुद्ध परमाणु

में होती है उसी प्रकार सामान्य व्यक्ति से लेकर वैज्ञानिकों में जो ज्ञान होता है उससे भी अधिक ज्ञान शुद्ध विचार, भावना एवं चारित्र से युक्त आध्यात्मिक संत में संभव है, होता है। इसलिए ऐसे साधु-संत, महापुरुष, तीर्थङ्कर, ऋषि, मुनि, अरिहंत, बुद्ध द्वारा शोध-बोध तथा प्रतिपादित सत्य-तथ्यात्मक सिद्धान्त वैज्ञानिकों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से भी अधिक, सत्य-तथ्य पूर्ण, सर्व जीव हितकारी होना संभव है, होता है। इसलिए वैज्ञानिकों एवं विज्ञान को भी ऐसे अध्यात्मिक वैज्ञानिकों द्वारा ज्ञात, अनुभूत प्रतिपादित सिद्धान्तों को स्वीकर करना चाहिए, प्रयोग में लाना चाहिए।

6) मैंने (आ. कनकनंदी) जो देश-विदेश के धर्म, दर्शन, विज्ञान, गणित आदि के साहित्यों का एक निष्पक्ष तुलनात्मक, समीक्षात्मक और वैज्ञानिक अध्ययन किया है उसके आधार पर मेरा यह विश्वास है कि भारतीय साहित्य में तथा विशेषत: जैन साहित्य में जो ज्ञान-विज्ञान सूत्रात्मक पद्धति से है वैसा वर्णन अन्यत्र यहाँ तक कि आधुनिक विज्ञान में भी पूर्णत: नहीं पाया जाता है। जैसा कि कुछ उसका दिग्दर्शन प्रस्तुत शोध निबंध में भी प्राप्त हो जाता है। विशेष परिज्ञानार्थे मेरे 150 ग्रंथों का अध्ययन करें। विशेषत: ''जैन तथ्य

जो आधुनिक विज्ञान से परे'' शृखंला का अध्ययन करें। कुछ अन्य उदाहरण यथा -

1) आईन्स्टीन के सापेक्ष सिद्धान्त से भी श्रेष्ठ जैन धर्म में वर्णित अनेकान्त एवं स्याद्वाद सिद्धान्त है।

2) आधुनिक विज्ञान में वर्णित अणु से भी जैन धर्म में वर्णित अणु सिद्धान्त और भी अधिक सूक्ष्म अकाट्य है।

3) आईन्स्टीन के प्रकाश एवं गति सिद्धान्त से भी श्रेष्ठ जैन धर्म में वर्णित गति सिद्धान्त है।

4) विज्ञान में वर्णित जो ब्रह्माण्ड, प्रतिब्रह्माण्ड है उसके आकार, प्रकार आदि का वर्णन है उससे भी अधिक निश्चयात्मक वर्णन जैन सिद्धान्त में पाया जाता है।

5) आधुनिक जिनोम सिद्धान्त, वंशानुगत सिद्धान्त, DNA, RNA सिद्धान्त से भी श्रेष्ठ कर्म सिद्धान्त जैन साहित्य में वर्णित है।

6) जैन धर्म में जैसे अलौकिक गणित का वर्णन है वैसा वर्णन अन्य धर्म, दर्शन, विज्ञान एवं आधुनिक गणित में भी नहीं है।

7) इसी प्रकार कार्यकारण सिद्धान्त, पर्यावरण सुरक्षा, पारिस्थितिकी, चतु:आयाम सिद्धान्त, जीव विज्ञान, मनोविज्ञान,

अध्यात्मिक विकास, ज्ञान मीमांसा आदि का वर्णन जैन धर्म में है ऐसा अन्यत्र नहीं पाया जाता है।

8) व्यक्ति, समाज, राष्ट्र से लेकर विश्व में विकास, शांति, मैत्री, समन्वय आदि के लिए विज्ञान एवं आध्यात्मिक समुचित समन्वय की केवल आवश्यकता ही नहीं है किंतु अनिवार्यता भी है। धर्म के पास होश (अनुभव, भावना, दीर्घ परम्परा, अध्यात्मिक विज्ञान) है तो आधुनिक विज्ञान में जोश (प्रगतिशीलता, खोज, विकास) है। **दोनों के जोश एवं होश के समन्वय से जो समुचित ऊर्जा उत्पन्न होगी उससे जो कार्य संभव है वह कार्य पृथ्रक्-पृथक् रूप से दोनों के माध्यम से भी होना सरल साध्य नहीं है।** जिस प्रकार अति प्राचीन काल में भारत में आध्यात्मिक एवं विज्ञान का समन्वय हुआ था जिससे भारत विश्वगुरु कहलाया उसी प्रकार समन्वय की आवश्यकता वर्तमान काल में है। इसी से विश्व में चहुँमुखी विकास के साथ-साथ शांति की स्थापना संभव है। इस प्रयास से हमारा संघ एवं हमारे द्वारा स्थापित दोनों संस्था के कार्यकर्ता सतत् प्रयत्नशील हैं। यह कार्य विश्व के लिए, विश्व के द्वारा, विश्व के माध्यम से संभव है। एतदर्थ हम विश्व के प्रबुद्ध,

जागृत, सहृदय जनों को सादर आह्वान करते हैं कि आप सब हमें इस कार्य में सहयोग दे!

''असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतंगमय।''

हे करुणामय, पतित पावन भगवान् ! मुझे असत् (मिथ्या) से सत् (सम्यक्) की ओर ले चलो! अज्ञान रूपी मोहान्धकार से ज्ञान रूपी ज्योति की ओर ले चलो! संसार रूपी मृत्यु लोक से मोक्षरूपी अमृत लोक की ओर ले चलो!

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामय।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चित्दुःखमाप्नुयात् ॥

हे करुणामय भगवान् ! विश्व के सर्व जीव सुखी रहें, निरोगी रहें, जीव सच्चरित्रमय, सज्जनमय, दृष्टिगोचर होवे, कोई भी दुःख को प्राप्त न होवे।

शिवमस्तु सर्व जगतःपरहित निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवन्तु लोकः ॥

सम्पूर्ण विश्व मंगलमय हो, सम्पूर्ण जीव जगत् परहित

में रत रहें, सम्पूर्ण दोषों का नाश हो, सदा-सर्वदा सब जीव जगत् सुखी रहें।

संदर्भ सूची -

1) अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा (लेखक आ. कनकनंदी, प्रस्तुत लेख के लेखक)

2) विश्व विज्ञान रहस्य (लेखक आ. कनकनंदी, प्रस्तुत लेख के लेखक)

3) विज्ञान और जैन आगम के संदर्भ में सूक्ष्म पदार्थ क्या है ? (लेखक महावीर राज गेलडा, पूर्व कुलपति-जैन विश्व भारती संस्थान)

4) ब्रह्माण्ड विज्ञान और जीवन (लेखक श्याम मनोहर व्यास, प्रचार्य जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान)

5) Space, Time and Relativity (By - David Pratt)

6) जैन दर्शन और विज्ञान (मुनि महेन्द्र कुमार)

आध्यात्मिक वैज्ञानिक धर्म से ही सर्वोदय सम्भव

(सत्य-समता-शान्ति पूर्ण धर्म ही आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म)

विभिन्न आकार-प्रकार के पात्र में रखा हुआ पानी का बाह्य आकार-प्रकार भले उस पात्र के अनुसार हो तथापि वस्तुत: पानी उस पात्र के आकार-प्रकार, गुण-धर्म वाला नहीं होता है; उसी प्रकार भले शारीरिक रुप से, व्यवहार से कोई किसी भी आकार-प्रकार का क्यों ना हो, धार्मिक मत, पंथ, परम्परा, रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, व्रत-नियम, तीर्थयात्रा आदि अलग-अलग रूप से क्यों न करता हो परंतु जब तक उसके भाव निर्मल न हो और व्यवहार दूसरों के लिए अपीडाकारक न हो, तबतक वह '**आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्मावलम्बी**' नहीं बन सकता है। भाव की पवित्रता तथा दूसरों के प्रति सत्य व्यवहार ही यथार्थ से '**आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म**' है। व्याख्या रूप से कहे तो सत्यनिष्ठा, समतापूर्ण, स्व-पर शांति प्रदायी, भाव-वचन-व्यवहार, '**अध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म**' है। कुछ सविस्तर वर्णन निम्नोक्त है -

जिस प्रकार भौतिक विज्ञान में भौतिक सत्य-तथ्य को पंथ, मत, देश, परम्परा, जाति, रङ्ग-रूप आदि से परे होकर स्वीकार

किया जाता है तथा वैज्ञानिक उपकरणों को सब पंथ, मत, देश आदि के लोग प्रयोग करते हैं उसी प्रकार जो आध्यात्मिक सत्य-तथ्य सार्वभौम, वैश्विक, सर्वजीव सुखकारी है वह अध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म है। पवित्र, सरल-सहज भाव में सत्य का निवास होता है अर्थात् इस पवित्र भाव से सत्य का प्रगटीकरण होता है। इस भाव से रहित वाचनिक, लिखित सत्य भी यथार्थ से सत्य नहीं है।

1) सत्यनिष्ठ भाव-वचन-व्यवहार

जैसा कि धूलिकण, बादल, सूर्य किरण आदि के कारण अमूर्तिक (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित) आकाश भी विभिन्न वर्ण का दिखाई देता है वैसा ही अपवित्र भावना-विचार (क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, मोह आदि) के कारण भाव में विभिन्न संक्लेश, संकीर्णता, भेद-भाव, आकर्षण-विकर्षण, घृणा, हिंसा, द्वेष, प्रतिशोध, कुटीलता, ठगी-चोरी, उद्दण्डता, आतङ्कवाद, घमंण्ड, दीनता-हीनता आदि विभिन्न विभाव प्रकट होते हैं। जिस प्रकार अपनी दृष्टि-शक्ति की कमी के कारण असीम-अनन्त आकाश भी ससीम, गोल गुम्बजाकार, दिग्वलय में पृथ्वी से सटा हुआ/समाप्त हुआ/मिला हुआ लगता है उसी प्रकार उपर्युक्त अपवित्र भावना से भी अनन्त/असीम सत्य संकीर्ण, छोटा, खण्डित, विभक्त, विपरीत रूप में अनुभव में आता है। प्रकारान्तर से जो क्रोध, मान, माया,

लोभ, काम, मोह, संक्लेश, संकीर्णता, भेद-भाव, आकर्षण-विकर्षण, घृणा, हिंसा, द्वेष, प्रतिशोध, कुटीलता, आतङ्कवाद आदि विभाव से रहित है उसकी भावना पवित्र है, उसके वचन पवित्र है, उसके व्यवहार पवित्र है। इससे ही सच्ची संस्कृति, धर्म, भाषा,परम्परा, ज्ञान-विज्ञान, गणित, नियम, राजनीति, कानून, रीति-रिवाज, नीति आदि जन्म लेती है या जिस संस्कृति से लेकर नीति आदि में सत्यनिष्ठ भाव-वचन-व्यवहार होते हैं वे ही सच्ची है, इससे विपरीत झूठी है।

2) समता पूर्ण भाव-वचन-व्यवहार -

सत्यनिष्ठ भाव-वचन-व्यवहार के अनन्तर समाता पूर्ण भाव-वचन-व्यवहार होते हैं। प्रकारान्तर से दोनों में कार्य-कारण सम्बन्ध या सिक्के के दो पहलू हैं। जिस प्रकार जितने-जितने अंश में प्रकाश होता है उतने-उतने अंश में अन्धेरा कम होता है या जितने-जितने अंश में अन्धेरा कम होता है उतने-उतने अंश में प्रकाश प्रकट होता है; उसी प्रकार सत्यनिष्ठ भाव-वचन-व्यवहार तथा समता पूर्ण भाव-वचन-व्यवहार में जानना चाहिए।

चोर, डाकू, लुटेरे, डकैत, ठग, आतंकवादी, पंथ-मत-परम्परावादी, राजनीतिक दल आदि में अपने-अपने संकीर्ण स्वार्थनिष्ठ, नियम-कानून व्यवस्था, लेन-देन, वचन-व्यवहारादि होते

हैं; जिससे उन्हें लाभ पहुँचे, उनकी व्यवस्था चले, परस्पर में सहयोग-समन्वय आदि हो परन्तु उनके नियम-कानून आदि से दूसरों को क्षति पहुँचने के कारण उनके नियमादि न सत्यनिष्ठ-समतापूर्ण, वचन-व्यवहारादि हैं । उसी प्रकार जिस धर्म (पंथ, मत, परम्परादि) के नियम, वचन, व्यवहारादि दूसरों को क्षति पहुँचाते हैं वह धर्म **'आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म'** नहीं हो सकता है। इस दृष्टि से वर्तमान में प्रचलित धर्म (पंथ, मतादि) वस्तुतः **'आध्यात्मिक वैज्ञानिक धर्म'** नहीं है भले बाह्यतः उस पंथादि को मानने वाले कोई-कोई अन्तरङ्ग से आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म को मानने वाले हो सकते हैं परन्तु सामुदायिक रूप से कोई भी मत में सब कोई **'आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्मावलम्बी'** नहीं है क्योंकि सामुदायिक रूप से सब में उपर्युक्त आध्यात्मिक वैज्ञानिक धर्म के गुण-धर्म नहीं पाये जाते हैं। अर्थात् भीड में सत्य नहीं होता है, सत्य को तो जाना जाता है, माना जाता है, तथा आचरण के द्वारा प्राप्त किया जाता है; अतः कभी भी भीड का अन्धानुकरण करने वाला **'आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्मावलम्बी'** नहीं बन सकता है, क्योंकि इसे तो स्व-पुरूषार्थ से प्राप्त किया जाता है न कि परम्परा रूप से या धरोहर से अथवा वंशानुगत से प्राप्त होता है। इसका कारण है कि **'आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म'** अमूर्तिक, स्व-पुरूषार्थ से

आत्म से उत्पन्न होने वाला होने से इसे परम्परा, धरोहर वंशानुगत रूप से या बलात् धर्म परिर्वतन से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इतना ही नहीं लोकतन्त्रात्मक पद्धति से, बहुमत से भी कोई ऐसा धार्मिक नहीं बन सकता है।

3) स्व-पर शान्ति प्रद भाव- वचन-व्यवहार -

उपर्युक्त गुण-धर्म-विशेषताओं से युक्त भाव-वचन-व्यवहार से स्व- पर को शान्ति प्राप्त होती है। अर्थात् जिससे स्व-पर (स्व से लेकर विश्व) को शान्ति मिलती है वह है आध्यात्मिक - वैज्ञानिक धर्म।अर्थात् (1) सत्यनिष्ठ भाव-वचन-व्यवहार (2) समतसपूर्ण भाव-वचन-व्यवहार (3)स्व-पर शान्ति प्रद भाव-वचन-व्यवहार रूपी आयाम एक त्रिभुज के तीन भुज तथा तीन कोण के समान है। अर्थात् कोई भी एक भुज के अभाव से या कोई एक कोण के अभाव से भी जिस प्रकार त्रिभुज नहीं बन सकता है उसी प्रकार उपर्युक्त तीनों आयाम या कोण के अभाव से **'आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म'** नहीं बन सकता है। अथवा 111 (एक सौ ग्यारह) के लिए तीनों एक के सम्यक् समन्वय चाहिए। अन्यथा एक भी एक के बिना 111 बन हीं नहीं सकता है। उसी प्रकार आध्यात्मिक वैज्ञानिक धर्म के बारें में जान लेना चाहिए।

प्रकारन्तर से कहने पर (1) आयाम बीज है तो (2) आयाम

वृक्ष है और (3) आयाम फल है। सत्य रूपी बीज से समता रूपी वृक्ष का फल है शान्ति। अर्थात् शान्ति चाहिए तो समता तथा सत्य को अपनाना केवल आवश्यक ही नहीं है परन्तु अनिवार्य भी है।

आकाश जिस प्रकार अखण्ड, सर्वव्यापी अनन्त है उसी प्रकार परम यथार्थ सत्य भी है। यह सत्य कोई अपना पराया रूप से अलग-अलग नहीं होता है। कष्ट यथा हमें प्रिय नहीं है उसी प्रकार दूसरों को भी प्रिय नहीं है। इसलिए सब के प्रति समानता विधेय है। इससे जायमान शान्ति सब के लिए इष्ट है।

कुछ लोग वैभव, विकास के लिए तो कुछ लोग शान्ति (सुख) के लिए असत्य, वैषम्य, हिंसा, अन्याय, पाप अपनाते हैं तो कुछ धर्म के नाम पर इसे अपनाते हैं। यह सब कार्य उसी प्रकार विपरीत है जैसा कि जड से चैतन्य तत्व, अमूर्तिक आकश को पिघलाकर पानी प्राप्त करना जैसा है। जिस प्रकार आधुनिक विज्ञान प्रयोग-प्रधान है उसी प्रकार '**आध्यात्मिक धर्म**' भी उपर्युक्त तीनों आयाम से युक्तता ही उसकी प्रयोगधर्मिता है। इसलिए भी मैंने (आ. कनकनंदी) इसे '**वैज्ञानिक धर्म**' रूप से अभिहित किया है, न कि भौतिक विज्ञान से युक्त धर्म को '**आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म**' माना है। आधुनिक विज्ञान तो भौतिक स्थूल पदार्थ जो कि इंद्रिय, यंत्र से परीक्षित है उसे ही मानता है। इसलिए यह विज्ञान भी भौतिक रूप से भी पूर्ण सत्य नहीं है

तो अमूर्तिक आध्यात्मिक विषय में कहना ही क्या ? किंतु इसकी पद्धति, सत्यनिष्ठा, प्रगतिशीलता, क्रमबद्धता, कार्य-कारण पद्धति आदि के समान आध्यात्मिकता को होना चाहिए इसलिए मैंने "वैज्ञानिक" विश्लेषण आध्यात्मिक के साथ जोडता हूँ। मैं (आ. कनकनंदी) भी इसी प्रकार '**आध्यात्मिक वैज्ञानिक धर्म**' को मानता हूँ भले बाह्य परम्परा, मत-पंथ, क्रिया-काण्ड तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और कुछ भी क्यों न हो।

यह सब मैंने देश-विदेश के विभिन्न धर्म-दर्शन, विज्ञान, राजनीति-कानून, इतिहास-पुराण, महापुरुषों की जीवनी तथा अनुभव के गहन-निष्पक्ष अध्ययन के आधार पर एवं मेरे दीर्घ अनुभव के आधार पर लिख रहा हूँ।

* *वत्थु सहावो धम्मो अहिंसा खमादि आद धम्मो ।*
रयणत्तयं य धम्मो अणेयंत सुभावणा धम्मो ॥ (आ. कनकनंदी)

वस्तु का स्वभाव धर्म है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एवं उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य, ब्रह्मचर्य ये आत्म धर्म हैं। रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र धर्म हैं। अनेकान्त (स्याद्वाद) बारह भावना एवं मैत्री, प्रमोद, करुणा एवं माध्यस्थ भाव भी धर्म है।

* *धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।*
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सयामणो ॥ (भ. महावीर)

धर्म ही लोक में उत्कृष्ट मङ्गल है, अहिंसा-धर्म है, संयम धर्म है, तप धर्म है। जिसका मन सर्वदा धर्म में लीन रहता है, उसको स्वर्ग के देव भी नमस्कार करते हैं।

* *पवित्रि क्रियते येन येनैव ध्रियते जगत् ।*
नमस्तस्मै दयार्द्राय धर्म कल्पाङ्घ्रिपाय वै ॥ (जैनधर्म)

जिससे जीव पवित्र हो जाता है और जो विश्व को धारण करता है, दया से आर्द्र धर्म रूपी कल्पवृक्ष के चरण को मैं नमस्कार करता हूँ, अर्थात् धर्म से ही पतित जीव पावन हो सकता है, दानव मानव हो सकता है, मानव महामानव तथा भगवान् बन सकता है। यह सम्पूर्ण चराचर विश्व धर्म से आधारित है।

* *'यस्मात् अभ्युदयः निश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः ।'* (वैदिक धर्म)

जिससे स्वर्गादिका अभ्युदय सुख एवं निर्वाण रूपी परम सुख की सिद्धि होती है उसको धर्म कहते हैं।

* *मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।* (यजुर्वेद)

मैं मैत्री की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ।

* *अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुक्खाण य सुहाणय ।*
अप्पा मित्तममित्तं य दुपट्ठिय सुपट्ठिय ॥ (महात्मा बुद्ध)

आत्मा स्वयं सुख-दुःख का कर्ता है। सुपथगामी आत्मा स्वयं का मित्र है तो कुपथगामी आत्मा स्वयं का शत्रु है।

* *इंद्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च ।*
अहिंसत्वं च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ (मनु स्मृति)

दुष्ट इंद्रियों की दुष्प्रवृति के निरोध से, रागद्वेष के खय से और अहिंसा तत्व से जीवों को अमृत-तत्व की प्राप्ति होती है।

* *अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य सुसंयमः ।*
मद्य मांसादि त्यागश्च तद्धि धर्मस्य लक्षणम् ॥ (म.भा., शांति पर्व)

* *धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।*
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ (वैदिक धर्म)

धृति, क्षमा, मनोनिग्रह, अचौर्य, शुचिता, इन्द्रिय दमन, धीमता, विद्या, सत्य, अक्रोध क्षमा यह धर्म के दस लक्षण है।

* *अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य सुसंयमम् ।*
मद्य-मांस-मधु त्यागो रात्रि भोजन वर्जनम् ॥ (मार्कण्डेय पुराण)

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, उत्तम संयम, मद्य-मांस-मधु सेवन त्याग, रात्रि भोजन-त्याग धर्म है।

* *'अमृतत्व हेतु भूतं परममहिंसारसायनं लब्धा ।'*

(पुरुषार्थसिद्ध्युपाय)

अमृत तत्व के हेतुभूत अहिंसा परम रसायन है अर्थात्

अहिंसा रूपी अमृत पान से जीव को शाश्वत अजरामर, अनन्त सुख सम्पन्न मोक्ष मिलता है।

* *''अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सान्निधौ वैरि त्यागः।''*

(पातञ्जलियोग दर्शन)

अहिंसा में स्थिर होने पर उस अहिंसक महात्मा के सम्पर्क-सहवास, दर्शन, स्पर्शन से सब प्राणियों का द्वेष भाव नष्ट हो जाता है।

*We cant't want blind Religion not also only Science but we want a Scientific Religion.

(आ. कनकनंदी)

* *अब्भंतरसोधीए बाहिरसोधी वि होदि णियमेण।*
अब्भंतरदोसेण हु कुणदि णरो बाहिरे दोसे॥ (भ.आ.)

अभ्यन्तर में विशुद्धि होने पर बाह्य विशुद्धि नियमसे होती है। अभ्यन्तर में दोष होने से ही मनुष्य शारीरिक दोष करता है।

* *लेस्सासोधी अज्झवसाणविसोधीए होइ जीवस्स।*
अज्झवसाणविसोधी मंदकसायस्स णादव्वा॥ (शिवाचार्य)

परिणामों की विशद्धि होने से लेश्या की विशुद्धि होती है। और जिसकी कषाय मन्द है उसके परिणामों में विशुद्धि होती है।

उपर्युक्त समस्त वर्णन से सिद्ध होता है कि ऐसे

'आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म' से अधिकांश धार्मिक लोग केवल आचरण से रहित नहीं है परंतु जानते भी नहीं है, मानते भी नहीं है। इतना ही नहीं इसे तो गरीब, नौकर, मूर्ख, असहाय, बेचारे, पिछडे, दुःखी, समस्याग्रसित, भयालु आदि का काम मानते हैं। येन-केन प्रकार से स्व-स्व मत-पंथ-परम्परा की बाह्य क्रिया-काण्डों को पालन करने मात्र से वे अवचेतन संतुष्टि करके स्वयं को धार्मिक, श्रेष्ठ, ज्येष्ठ मानकर दुराभिमान करते हैं तथा दूसरों से घृणा करके और भी अधिक आध्यात्मिक, वैज्ञानिक धर्म की हत्या करते रहते हैं। केवल मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर में तथा बाह्य क्रिया-काण्ड में यह धर्म नहीं होता है भले इस धर्म के लिए मन्दिर आदि बाह्य कारण बन सकते हैं। परंतु अनुभव में आता है और विश्व इतिहास साक्षी है तथा प्रायोगिक, प्रत्यक्ष रूप में उपलब्ध है कि इन मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर, धार्मिक क्रिया-काण्डों ने ही आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म को मलीन किया है, विकृत किया है, विपरीत किया है तथा उस की निर्मम हत्या भी की है एवं हो रही है और जब तक उपर्युक्त वैज्ञानिक धर्म को समग्रता से पूर्णतः भाव-वचन-व्यवहार में नहीं अपनाया जायेगा तब तक उपर्युक्त दुर्घटनायें घटती रहेंगी। इसीलिए स्व-पर, विश्व शांति के लिए, विकास एवं समृद्धि के लिए

आध्यात्मिक, वैज्ञानिक धर्म की आवश्यकता ही नहीं अपितु अनिवार्यता भी है।

प्रायः प्रत्येक धर्मावलम्बियों में धर्म के नाम पर ईर्ष्या, द्वेष, भेद-भाव, व्यापार, ठगी, शोषण, ढोंग, पाखण्ड, मायाचारी, छल-कपट, आडम्बर, अन्याय-अत्याचार, आतङ्कवाद, युद्ध-कलह, हत्या आदि जघन्य भाव-वचन-व्यवहार होते रहते हैं। यह सब जहाँ है वहाँ **'आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म'** की हत्या होती रहती है। इसलिए **'आध्यात्मिक-वैज्ञानिक धर्म'** के इच्छुक इससे सदा-सर्वदा-सर्वत्र अत्यन्त दूर ही रहे भले दुनिया कुछ माने, कुछ भी बोले, कुछ भी करें, क्योंकि दुनिया में सत्य-समता-शांति दुर्लभ है और उसे प्राप्त करने वाले भी अनन्त में एकाध मनुष्य हैं। भीड को नहीं भलाई/अच्छाई को स्वीकार करने वाले महान् होते हैं। सत्य सहित संख्या के महत्व को स्वीकार करो न कि सत्य रहित संख्या को। सत्य-समता-शांति ही धर्म है, विज्ञान है, अमृत है, ईश्वर है, नीति है, ईश्वरीय गुण है, तप है, त्याग है, साधना है, परम लक्ष्य है, साधन भी है और साध्य भी है।

लेखक :- वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी जी

षष्टम् अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी को संबोधित करते हुए सु.वि.वि. के कुलपति डॉ. बी.एल. चौधरी

विशेष जानकारी के लिए आचार्य कनकनंदी
जी के निम्नोक्त ग्रंथों का अध्ययन करें

ग्रंथ प्राप्ति स्थान - धर्म दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा - छोटूलाल चित्तौडा, चंद्रप्रभ दि. मंदिर आयड,
आयड बस स्टॉप के पास, उदयपुर-313001 (राज.)
फोन नं.- (0294) 2413565

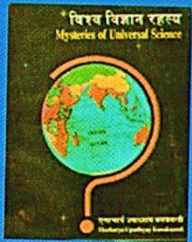

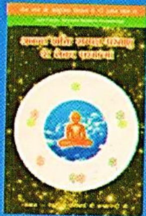

Jain Printers, Udr.#2425843